1955H Sagaar Dharmamrat and Yogashastra

Sagaar Dharmamrit aur Yogshastra (In Varni Abhinandan Granth, 1955?)

सागारधर्मामृत और योगशास्त्र

श्री पं० हीरालाल शास्त्री, न्यायतीर्थ ।

बारहवीं तेरहवीं शतीमें रचे गये जैन वाङ्मयकी ओर विद्वानोंका सबसे अधिक ध्यान जिन आचार्योंने खींचा है, उनमेंसे श्वेताम्बर परम्परामें आचार्य हेमचन्द्र और दिगम्बर परम्परामें पंडित-प्रवर आशाधरका नाम चिरस्मरणीय रहे गा । जिस प्रकार कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रने जैन वाङ्मयके प्रायः सभी विषयोंपर अपनी कुशल लेखनी चलायी है, उसी प्रकार आचार्यकल्प महापंडित आशाधरने भी धर्म, न्याय, साहित्य, वैद्यक आदि अनेकों विषयोंपर स्वतंत्र रचनाएं की हैं, जो दि० परम्परामें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं । आचार्य हेमचन्द्र तथा पं० आशाधरने अपने सामने उपस्थित समस्त जैन आगमका मंथन कर और उसमें अपनी विशिष्ट प्रतिभारूप मिश्री, तर्कणारूप एला और अनुभवरूप केशरका सम्मिश्रण करके जिज्ञासुओंके नेत्र, रसना और हृदयको आल्हादित करने वाला बौद्धिक श्रीखण्ड उपस्थित किया है ।

यदि आचार्य हेमचन्द्रने योगशास्त्र ग्रन्थमें ध्यान आदिका वर्णन करते हुए श्रावक और मुनियोंके धर्मोंका भी वर्णन किया है तो पं० आशाधरने भी धर्मामृत नामके ग्रन्थके दो भाग करके पूर्वार्धमें मुनिधर्मका वर्णन किया, जो आज स्वतंत्र 'अनगारधर्मामृत, नामसे प्रकाशित है । और उसी ग्रन्थके उत्तरार्धमें श्रावक धर्मका वर्णन किया है, जिसका नाम सागारधर्मामृत है ।

पं० आशाधरजीसे पूर्व दि० आचार्योंने जितने भी श्रावक धर्मके वर्णन करनेवाले ग्रन्थ रचे हैं उन सबका दोहन कर एवं अनेकों नवीन विशेषताओंसे अलंकृत तथा स्वोपज्ञ टीकासे परिष्कृत करके पं० आशाधरजीने ऐसे अनुपम रूपमें सागरधर्मामृतको दि० सम्प्रदायके धर्मानुरागी श्रावकोंके लिए प्रस्तुत किया है कि वह आज तक उनका पथ प्रदर्शन करता है । प्रकृत ग्रन्थका परिशीलन करनेसे जहां एक ओर उनकी अगाध विद्वत्ता और अनुभव मूलक लेखनीपर श्रद्धा होती है, वहीं दूसरी ओर उनकी असाम्प्रदायिकता और सद्गुण-ग्राहकता भी कम आश्चर्य जनक नहीं है, प्रत्युत वर्तमानके कलुषित साम्प्रदायिक वातावरणसे परे महान् एवं अनुकरणीय आदर्श समाजके सामने उपस्थित करती है । जैसा कि पं० आशाधरजीके सागारधर्मामृत तथा आचार्य हेमचन्द्रके योगशास्त्र-वर्णित श्रावकधर्म प्रकरणमें दृष्टिगोचर यथेष्ट आदान प्रदानसे सिद्ध होता है, यह बात निम्न तुलनात्मक उद्धरणोंसे भली भांति स्पष्ट हो जाती है ।

पं० आशाधरजीके सागारधर्मामृतकी टीका वि० सं० १२९६ में पूर्ण हुई जब कि आचार्य हेमचन्द्र वि० सं० १२२९ में स्वर्गवासी हो चुके थे। इस प्रकार पं० आशाधरजीका आ० हेमचन्द्रसे पीछे होना निर्विवाद सिद्ध है। अतः उनपर आचार्यका प्रभाव स्पष्ट है जैसा कि आचार्य हेमचन्द्रके समान दुरूह मूल-ग्रन्थोंके स्पष्टीकरणार्थ पं० आशाधरजीके अपने अनगारधर्मामृत और सागारधर्मामृतपर स्वोपज्ञ टीकाएं लिखनेसे सिद्ध है। यहां दोनों ग्रन्थोंके तुलनात्मक अध्ययनके आधारपर सागरधर्मामृतके कुछ ऐसे स्थलोंके उद्गमका स्पष्टीकरण किया जाता है जो मूल जैन परम्परासे मेल नहीं खाते।

वनमालाका शपथ दिलाना—सागारधर्मामृतके चौथे अध्याय श्लोक २४ में रात्रिभोजन-त्याग व्रतकी महत्ता बतलाते हुए लिखा है 'रामचन्द्रको कहीं ठहराकर पुनः यदि तुम्हारे पास न आऊं तो मैं हिंसा आदि पापोंका दोषी होऊं' इस प्रकार अन्य शपथोंको करनेपर भी वनमालाने लक्ष्मणसे 'रात्रि भोजनके पापका भागी होऊं' इस एक शपथको ही कराया।' टीकामें लिखा है कि रामायणमें ऐसा सुना जाता है। किन्तु दिगम्बर परम्परामें रामका चरित वर्णन करने वाले दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—एक तो रविषेणाचार्य रचित पद्मचरित और दूसरा गुणभद्राचार्य रचित उत्तरपुराण। उत्तरपुराणका कथानक अति संक्षिप्त है और उसमें वनमालाके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा गया है पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन है। वनमालाको छोड़कर जब लक्ष्मण रामके साथ जाने लगे, तब वह बहुत विकल हुई, उसके चित्त-समाधानके लिए लक्ष्मणने कुछ शपथ भी किये—मगर वहां रात्रिभोजनके पापसे लिप्त होनेवाले किसी शपथका वर्णन नहीं है जैसा कि पद्मचरितके पर्व २८ में आये ३५–४३ वें श्लोकों से स्पष्ट है। प्राकृत 'पउमचरिउ' भी रामके चरित्रको वर्णन करता है और ऐतिहासिक विद्वान् इसे रविषेणा-चार्यके 'पद्मचरित' से भी पुराना मानते हैं। यद्यपि अभी तक यह निर्णित नहीं है कि यह ग्रंथ दि० परम्पराका है, अथवा श्वे० परम्पराका। तथापि श्वे० संस्थासे मुद्रित एवं प्रकाशित होनेके कारण सर्वसाधारण इसे श्वेताम्बर ग्रन्थसा ही सोचते हैं। प्रकृतमें हमें उसके दि० या० श्वे० होनेसे कोई प्रयोजन नहीं है। इस ग्रंथमें वनमालाकी चर्चा उसी प्रकार विशद रूपसे की गयी है, जिस प्रकार कि संस्कृत पद्मचरितमें। पर यहां पर भी रात्रिभोजनकी शपथका कोई उल्लेख नहीं हैं जैसा कि पर्व्व ३८ गाथा १९-२० के सिद्ध हैं।

इसके विपरीत आचार्य हेमचन्द्ररचित त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरितके सातवें पर्वमें वनमालाका वर्णन है और वहां उसके द्वारा लक्ष्मणसे रात्रिभोजनके पापसे लिप्त होनेवाली शपथका भी उल्लेख है। "आंखोंमें आंसू भरकर वनमाला बोली—"प्राणेश, उस समय आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा किस लिए की थी ? यदि उस समय मैं मर जाती तो मेरी वह सुखमृत्यु होती; क्योंकि मुझे आपके विरहका यह असह्य दुःख न सहना पड़ता।" लक्ष्मणने उत्तर दिया—'हे वरवर्णिनी, मैं अपने ज्येष्ठ बन्धुको इच्छित स्थान पर पहुंचाकर तत्काल ही तेरे पास आऊंगा।'

क्योंकि तेरा निवास मेरे हृदयमें है। हे मानिनी ? पुनः यहां आनेकी प्रतीतिके लिए यदि तुझको मुझसे कोई घोर प्रतिज्ञा कराना हो, तो वह भी मैं करनेको तयार हूं।" फिर वनमालाकी इच्छासे लक्ष्मणने शपथ ली कि "यदि मैं पुनः लौटकार यहां न आऊं, तो मुझको रात्रि-भोजनका पाप लगे[1]।"

इसप्रकार यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पं० आशाधरजीके सामने हेमचन्द्रका त्रि० श० पु० चरित था और उसीके आधार पर उन्होंने वनमालाकी रात्रि भोजन वाली शपथका उल्लेख किया है। या यह भी संभव हो सकता है कि रामके चरितका प्रतिपादक अन्य कोई संस्कृत या प्राकृत ग्रन्थ उनके सामने रहा हो और उसके आधारपर पंडितजीने उक्त उल्लेख किया हो। फिर भी पंडितजी की रचना शैलीको देखते हुए तो ऐसा लगता है कि दि० परंपराका और कोई उक्त घटनाका पोषक ग्रन्थ उनके सामने नहीं था, जिसकी पुष्टि उक्त श्लोककी टीकाके 'किल रामायणे एवं श्रूयते' इस पदसे भी होती है। अन्यथा वे उस ग्रन्थका नाम अवश्य देते, क्योंकि प्रकृत ग्रन्थमें अन्यत्र दूसरे ग्रन्थों और ग्रन्थकारोंके नामोंका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है—तथा योगशास्त्रके "श्रुयते ह्यन्यशपथान-नाद्दत्यैव लक्ष्मणः। निशाभोजनशपथं कारितो वनमालया।" श्लोकसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है।

भोजनका प्रेतके द्वारा जूठा किया जाना—दोनों ग्रन्थों[2] के श्लोकोंमें रात्रिभोजनको प्रेत-पिशाचादिके द्वारा उच्छिष्ट किये जानेका उल्लेख है, वह भी दि० परंपराके विरुद्ध है। दि० शास्त्रोंमें कहीं भी ऐसी किसी घटनाका उल्लेख नहीं देखनेमें आया जिससे कि उक्त बातकी पुष्टि हो सके। इसके विपरीत श्वे० ग्रन्थोंमें ऐसी कई घटनाओंका उल्लेख है जिनमें प्रेत आदिसे भोजनका उच्छिष्ट किया जाना, देवोंका मानुषीके साथ संभोग करना आदि सिद्ध होता है। यहां यह शंका की जा सकती है कि संभव है प्रेत-पिशाच आदिसे पं० आशाधरजीका अभिप्राय व्यन्तरादि देवोंसे न हो कर किसी मांस भक्षी मनुष्यादिसे हो; सो भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसी श्लोककी टीकामें पं० जी स्वयं लिखते हैं "तथा प्रेताद्युच्छिष्ट-मपि प्रेता अधम व्यन्तरा आदयो येषां पिशाचराक्षसादीनां तैरुच्छिष्टं स्पर्शादिना अभोज्यतां नीतं" (अ० ४ श्लोक २५ की टीका)। उक्त उद्धरणसे मेरी बातकी और भी पुष्टि होती है साथ ही इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि श्वे० शास्त्रोंमें वर्णित व्यंतरादि देवोंका मनुष्योंके भोजनको खाना, मानुषी स्त्रीके साथ संभोग करना आदि पं० आशाधरजीको भी इष्ट नहीं था, उन्हें यह बात दि० परम्परासे विरुद्ध प्रतीत हुई, अतएव उन्होंने उच्छिष्ट' का अर्थ 'मुंहसे खाया' न करके 'स्पर्श आदिके द्वारा अभोज्य किया गया' किया है।

१. रामायण पृ० २३६,—अनुवादक-कृष्णलाल वर्मा।

२. योग० ३—४८। सागारध० ४-२५।

अतिचारोंका वर्णन—योगशास्त्रके तीसरे अध्यायमें श्लोक नं० ९० से ११९ तक श्रावकके व्रतोंके अतिचारोंका वर्णन है। स्वोपज्ञ टीकामें परंपरासे चले आनेवाले अतिचारोंका खूब स्पष्ट विवेचन किया गया है जो उस समय तकके रचित श्वे० ग्रन्थोंमें देखनेको नहीं मिलता। इस प्रकरणके श्लोकोंकी टीका सागारधर्मामृतमें यथास्थान वर्णित १२ व्रतोंके अतिचारोंके व्याख्यानमें ज्योंकी त्यों उठाकर रख दी गयी प्रतीत होती है, अन्यथा दोनों टीकाओंमें शब्दशः समता न दिखायी देती। दि० परम्पराके श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रन्थोंमें पं० आशाधरजीके पूर्व किसी भी आचार्यने अतिचारोंकी व्याख्या उस प्रकारसे नहीं की, जिसप्रकारसे कि पं० जीने सागारधर्मामृतमें की है। यही कारण है कि इस अदृष्ट और अश्रुत-पूर्व अतिचारोंकी व्याख्यासे दि० विद्वान् जहां एक ओर उन्हें आचार्य कल्प कहनेमें गौरवका अनुभव करते आ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर शुद्ध आचरण पर दृष्टि रखनेवाले कुछ दि० विद्वान् उनके ब्रह्मचर्याणुव्रत संबंधी अतिचारोंकी व्याख्यासे चौंकते हैं और उनके इस प्रसिद्ध और अनुपम ग्रन्थका बहिष्कार भी करते चले आरहे हैं।

खरकर्मोंका उल्लेख—भोगोपभोगपरिमाण व्रतके व्याख्यानमें आ० हेमचन्द्रने श्वे० आगमोंमें प्रसिद्ध १५ खरकर्मों का योगशास्त्रके तीसरे अध्यायमें श्लोक नं० ९९ से ११४ तक वर्णन किया है। पं० आशाधरजीने सागार० अ० ५ श्लो० २० में भोगोपभोगव्रतके अतिचारोंकी व्याख्या करनेके बाद एक शंका-समाधान लिखकर उसके आगे ही १५ खरकर्मोंका का वर्णन तीन श्लोकोंमें करके तीसरे द्वारा उनकी निरर्थकता भी बतलानेका उपक्रम किया है। शंका-समाधान विषयक अंश इसप्रकार है—"अत्राह सितम्बराचार्यः—भोगोपभोगसाधनं यद्द्रव्यं तदुपार्जनाय यत्कर्म व्यापारस्तदपि भोगोपभोग शब्देनोच्यते कारणे कार्योपचारात् ततः कोट्टपालनादि खरकर्मापि त्याज्यम्। तत्र खरकर्मत्यागलक्षणे भोगोपभोगव्रते अंगारजीविकादीन् पंचदशातिचारांस्त्यजेदिति। तदचारु, लोके सावद्य कर्मणां परिगणनस्य कर्तुमशक्यत्वात्। अथोच्यते अतिमन्दमति प्रतिपत्त्यर्थं तदुच्यते तर्हि तान् प्रतीदमप्यस्तु। मन्दमतीन् प्रति पुनस्त्रसबहुघात विषयार्थत्यागोपदेशेनैव तत्परिहारस्य प्रदर्शितित्वादिति।"

अर्थात्—शंका—यहां कोई श्वेताम्बर आचार्य कहता है कि भोग और उपभोगके साधनभूत द्रव्यके उपार्जनके लिए जो कर्म या व्यापार किया जाता है वह भी कारणमें कार्यके उपचारसे 'भोगोपभोग' इस शब्दसे कहा जाता है। इसलिए कोतवाली करना आदि खरकर्म (क्रूरकार्य) भी छोड़े अतः उन खरकर्मोंका त्याग कराने वाले भोगोपभोग व्रतमें अंगारजीविका आदि १५ अतिचारोंको छोड़ना चाहिए। समाधान—उक्त कथन ठीक नहीं, क्योंकि लोकमें प्रचलित सावद्य (पाप) कार्योंकी गणना करना अशक्य है। यदि कहो कि अत्यन्त मन्दबुद्धि शिष्योंको समझानेके लिए अंगार-जीविकादि खरकर्मोंको कहते हैं, तो उनके लिए भले ही आप कहिये। किन्तु उनसे जो कुछ अधिक जानकार मन्दमति

हैं, उनके लिए तो त्रसघात, एकेन्द्रिय बहुघात, प्रमाद, अनिष्ट और अनुपसेव्य पदार्थोंके त्यागके उपदेश द्वारा उक्त खरकर्मोंका परिहार बतलाया ही जा चुका है।

'अत्राह सिताम्बराचार्यः' इस वाक्यसे किसी प्रसिद्ध श्वे० आचार्यके किसी महत्त्वपूर्ण या प्रसिद्धि-प्राप्त ग्रन्थका उनके सामने होना निश्चित है। उपर्युक्त प्रमाणों और उद्धरणोंके प्रकाशमें यह बात भी निश्चित सिद्ध होती है कि वह ग्रन्थ आ० हेमचन्द्रका प्रसिद्ध योगशास्त्र ही था। और उसीसे ये स्थल लिये गये हैं। पंडिताचार्यकी उदारता तथा जिनवच प्रीति आजके साहित्यिक सम्प्रदायवादियोंके लिए प्रकाश स्तम्भ है।